शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

वेदान्तदर्शन पर भक्ति योग का प्रभाव

डॉ.जितेन्द्र शर्मा
एसोसियेट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना; मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं। इस खोज का आरम्भ व अन्त प्रेम में होता है। ईश्वर के प्रति प्रेमोन्मत्तता का एक क्षण भी हमारे लिए मुक्ति देने वाला होता है। पुराणादि ग्रन्थों में ईश्वर का साकार रूप बहुध वर्णित किया गया है तथा उन रूपों से जुड़े कई प्रकरणों का भी समावेश इन ग्रन्थों में मिलता है। जब भक्त अपने ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है तब वह; ईश्वर उसके सभी पाप पुण्यों तथा शुभाशुभ कर्मों का नाश कर उसे अपनी शरण में ले परमानंद का अधिकारी बना देता है और यही उस भक्त की परिणति है। वेदान्त दर्शन इसी साकार ईश्वर के प्रति अखण्ड भाव है।

सूचक शब्दावली - भक्तियोग, वेदान्त, ईश्वरकी खोज, नवधा भक्ति

भूमिका

सामान्यतः वेदान्त अद्वैत दर्शन के प्रसार में पूर्ण रूप से समर्पित है। किन्तु यदि वेदान्त का गहनता से अध्ययन करें तो हमें वेदान्त दर्शन में लोकसंग्रहार्थ कर्म और कर्म में भक्ति का लीला विलास दृष्टिगोचर होता है। जो वेदान्त दर्शन का ही एक अंश है। आचार्य शंकर विवेकचूड़ामणि में भक्ति का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि अपने स्वरूप का स्मरण करना ही भक्ति है। शंकर ने भक्ति विषय पर अपनी अनेक कृतियों में भक्ति की विशद् विवेचना प्रस्तुत की है। अध्ययन का लक्ष्य एवं प्रयोजन- वर्तमान समय में निरन्तर बढती असंतोष की समस्या को कम से करने के लिये भक्ति की उपयोगिता व महत्व।

विश्लेषण के विभिन्न चरण एवं आयाम

भक्ति क्या है : शंकर भक्ति को दो श्रेणीयों में विभक्त करते है। स्थूल व सूक्ष्म - स्थूल भक्ति के लक्षणों के विषय में शंकर कहते हैं कि ''वर्णाश्रम, धर्मिक कर्मों का अनुष्ठान, नित्य भगवान श्री कृष्ण का पूजन अर्चन तथा सत्संग, सत्यभाषण, स्त्राी भोग से वंचना, तीर्थभ्रमण तथा भगवद् चिन्तन करते हुए प्राण त्याग ये सब स्थूल भक्ति के लक्षण हैं।'' .आगे सूक्ष्म भक्ति के विषय में उपदेश देते हैं कि ''स्थूल भक्ति का अभ्यास करते करते श्री कृष्ण के अनुग्रह से सूक्ष्म भक्ति का उदय होता है।''

आचार्य शंकर ने शिव, शक्ति, विष्णु, कृष्ण, नदी, तीर्थ आदि विभिन्न देवि देवताओं पर स्तोत्रों की रचना की जिसमें उन्होनें कई स्थलों पर नवधा भक्ति के अंगों को समावेशित किया अपने गीताभाष्य में भी भक्ति प्रकरण में शंकर के

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

द्वारा युक्तियुक्त व्याख्या प्रस्तुत कि गयी है। यथा -

श्रवण भक्ति का उल्लेख उन्होंने प्रबोध सुधकर में भगवद् कथा के श्रवण का निर्देश देकर किया है। शंकर गीताभाष्य में स्मरण भक्ति हेतु कहते हैं कि भक्त ईश्वर को स्मरण करता हुआ उन्हें ही प्राप्त होता है। तथा उनके चरणों की छाया में वेदान्त का अध्ययन करते हुए उनके पादामृत सेवन का निर्देश कर वह पादसेवन भक्ति के महत्व को स्पष्ट करते हैं।तथा भगवान श्री कृष्ण को श्रेष्ठ सखा के रूप में स्वीकारना ही सख्य भक्ति का निरूपण है। और उनके द्वारा अनेकानेक कृतियों में अपने आत्म तत्व को ईष्ट के प्रति समर्पित करनें का निर्देश उनकी आत्मनिवेदन भक्ति को इंगित करते हुए शांकर दर्शन में नवधा भक्ति के स्वरूप को प्रकाशित करता है।

आचार्य शंकर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कर्म घोषित करते हैं वह स्पष्ट कहते है कि कर्म वह है जो कृष्ण को प्रिय है। ऐसे शिव व कृष्ण पूजन रूपी कर्म में पछताना नहीं पड़ता। सर्वत्रा आत्म दर्शन ही उनकी एकात्म निष्ठा थी और यही भक्ति का परम् प्रयोजन है।

भक्ति का स्थान-भक्ति साधना का वेदान्त दर्शन में अभिन्न स्थान है। एिक ओर मोक्ष हेतु आचार्य जहाँ ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हैं वहीं दूसरी ओर वह मुक्ति के हेतुओं में भक्ति को श्रेष्ठ बताते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं की वेदान्त दर्शन दो तरह का उपदेश कर रहा हैं। उसका इस प्रकार का उपदेश दो तरह की प्रवृत्ति वाले मनुष्यों के लिए है। पहले वह जिनके अंत:करण में ज्ञानाग्नि का स्फुरण पूर्व विद्यमान है, किन्तु उस पर अविद्या का आवरण है जिसके क्षरण हेतु निर्गुण की उपासना का उपदेश किया गया है। दूसरे वह मनुष्य जिनके अतंःकरण में ज्ञान का लेश मात्रा भी स्फुरण नहीं है। उनके लिए सगुण मार्ग पर चलने का उपदेश किया गया है। यदि हम अद्वैत मत भक्ति का स्थान श्रेष्ठ है।

भक्ति का तात्पर्य मात्र प्रतिमा के सम्मुख बैठ ध्यानार्चन ही नहीं यह तो उसका परा स्वरूप है अपरा रूप में तो वह ब्रह्म भाव कि ही भांति है, जिसमें निर्गुण, निर्विकल्प, निर्मल, गुणातीत, निराकार परमानंद ब्रह्म की भक्ति का उपदेश है। इस प्रकार यदि हम विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि वेदान्त दर्शन में भक्ति का स्थान अद्वितीय है भक्ति के द्वारा ही ईश्वर अथवा ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है। अर्थात् ब्रह्म तक जाने वाला मार्ग भक्ति से ही हो कर गुजरता है। भक्ति व साकार ईश्वर-वेदान्तदर्शन ज्ञान की चरमता का परिचायक है। वेदान्त दर्शन में ही सोपाध्कि ब्रह्म की अभिकल्पना प्रस्तुत कि जो उस समाज को प्रभावित कर सकी जिसमें ईश्वर की रूपोपासना का विधान था।वेदान्त दर्शन मानव की उस प्रवृत्ति से भिज्ञ था जिसमें वह अपने ईष्ट के स्वरूप को देखने का निरंतर अभिलाषी बना रहता है। अतः वेदान्त दर्शन मे देव वंदना हेतु अनेकानेक स्तुति प्रार्थानाओं और स्तोत्रों कि रचना की जिसमें उन्होनें विभिन्न देवी देवताओं के साकार रूप को प्रस्तुत किया। एक स्थल पर उन्होनें माँ भगवती के परम् मनोरम स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि - ‘‘वह त्रिभुवन मोहनी आँखों में काजल लगाये हुए है, मस्तक पर कुंकुम धारण किये है, उसके कमर पर मोतीयों की माला शोभायमान हो रही है, वह स्वर्ण जडित वस्त्रों को धारण किये है तथा सदा किशोरावस्था में स्थिर है।’’ इसी प्रकार भगवान शिव के दिव्य रूप का वर्णन शिवाष्टक में श्री कृष्ण के स्वरूप का वर्णन कृष्णाष्टक में तथा

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

और भी अन्य देवी देवताओं के दिव्य स्वरूप का वर्णन अति मनोरम भाव में किया है।

वेदान्त दर्शन ने ईश्वर की सगुणोंपासना के सहारे अनेक अंध्विश्वासों का भी अंत किया।वेदान्त दर्शन ने भक्ति को मात्र मूर्तिपूजा तक ही सीमित नहीं रखा वरन् उनका उद्देश्य सगुण के सहारे जनमानस में निर्गुण भाव को उत्पन्न करना था।आनंदलहरी में वह माँ भगवती की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि "जिस प्रकार लोहा पारस को छू जाने पर स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है, गन्दा जल गंगा में पड़कर पवित्रा हो जाता है उसी प्रकार भिन्न भिन्न पापों से मलिन हुआ मेरा अंतःकरण यदि प्रेम पूर्वक तुझमें आसक्त हो तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा वेदान्त दर्शन के स्तवों और स्तुतियों में हमें सर्वव्यापी आध्यात्मिक दृष्टिकोण की झलक मिलती है। ये महान् अद्वैतवादी अपनी आत्मा की तरह सभी वस्तुओं के पीछे एक परमात्मसत्ता का दर्शन करते हैं। वे उसका ध्यान करते हुए अनुभव करते हैं कि वे ब्रह्म के साथ अभिन्न हैं -

प्रातः स्मरामि हृदि संस्पुफरदात्मतत्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः।।

अर्थात् "मैं प्रातः काल अपने हृदय में ज्योतिर्मय आत्मतत्त्व का स्मरण करता हूँ, जो सच्चित् सुख स्वरूप है, परमहंस संन्यासियों की परमगति है और तुरीय है, जो स्वप्न जाग्रत और सुषुप्ति अवस्थाओं से परे और नित्य है। मैं वही निष्कल ब्रह्म हूँ, भूतों का समूह नहीं।"वेदान्त दर्शन सभी ईश्वरीय भावों में एक ही परमात्मसत्ता को पहचानता हैं।

वेदान्त दर्शन मान्यता है कि शिव, विष्णु तथा अन्यान्य देवी देवता उस अनन्त को ही व्यक्त करते हैं, जो ससीम को सत्ता प्रदान करता है। शिव की स्तुति करते हुए वे कहा गया हैं कि

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोकांरवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्भं तमीशं भजे लीयते यत्रा विश्वम्।।

अर्थात् "मैं उस एक अद्वय, जगत् के आदिकारण, निरीह, निराकार, ओंकारवेद्य परमात्मा को प्रणाम् करता हूँ, जो जगत् की सृष्टि, पालन और विनाश करने वाले ईश्वर हैं। इस पद के आगेवेदान्त दर्शन कहता है - "तरंगें सागर में विलीन होती हैं, सागर तरंगों में नहीं। इसी तरह हे नाथ ! समस्त भेदों के समाप्त हो जाने पर मैं तुममें लीन होता हूँ, तुम मुझमें नहीं।" वेदान्त दर्शन मेमाँ जगदम्बा की प्रेमपूर्वक पुकार के प्रति सबसे अध्कि आकृष्ट होता है और वे स्वयं को एक सामान्य भक्त मानकर अत्यन्त मार्मिक प्रार्थना करते हैं:

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः।परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।।
मदीयोयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे।कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।। 14

अर्थात् "हे जननी! पृथिवी में तुम्हारे अनेक योग्य पुत्रा हैं, उनमें मैं एक अयोग्यतम् पुत्रा हूँ। फिर भी हे शिवे ! मेरा त्याग करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है, क्योंकि कुपुत्रा जन्म ले सकता है, लेकिन कुमाता कभी नहीं हो सकती।" उनकी दृष्टि में कोमलतम भावनाओं की अद्भुत लीला के बावजूद भी माँ जगदम्बा ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और उनका मानवीय रूप उसका एक प्रतिबिंब मात्रा है। उसी जगदम्बा ने लीला के लिए एक अद्वितीय चैतन्य सत्ता को ईश्वर और जीवों में विभक्त कर दिया है।

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

वेदान्त दर्शन भक्ति में ईश्वर का महत्व भलिभांति जानता था। वेदान्त दर्शन ने अपनी रचनाओं में उस ईश्वर को निर्गुण का ही सगुण रूप कहा -

अजं शाश्भतं कारणं कारणानां।शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।।

तुरीयं तमः पारमाद्यान्त हीनं। प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्।।15

अर्थात् "जो अजन्मा है, नित्य है, कारणों का भी कारण है, कल्याण स्वरूप है, एक है, प्रकाशकों का भी प्रकाशक है, अवस्थात्राय से विलक्षण है, अज्ञान से परे है, आदि और अनंत है। उस परम् पावन अद्वैत स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।"वेदान्त दर्शन में भक्ति का ईश्वर से अटूट संबन्ध है। जिसकी घोषणा वेदान्त दर्शन स्वयं करते हुए कहता हैं कि "भक्ति से ई श्वर कृपा सहज हो जाती है।

भक्ति की आवश्यकता क्यो-यह संसार भाववैचित्रय से परिपूर्ण है यहाँ सुख दुःख की विचित्राता सर्वत्रा व्याप्त है। अतः उस परम् चैतन्य जो सदा सर्वदा आनंदमय परमानंद है, से जीव का सम्बन्ध भक्ति द्वारा ही होता है। भक्ति ही उस आनंद के साथ जीव का संबंध स्थापित कराती है। अर्थात् उस परमानंद के साथ तारतम्य का नाम ही भक्ति है और यह भक्ति ही मोक्ष का हेतु होती है। 16 गीताभाष्य में शंकर भक्ति की आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं विवेक परमात्म आत्म विषयक ज्ञानरूप भक्ति से ही प्राप्त होता है। मुक्ति के लिए भी शंकर भक्ति को आवश्यक मानते हैं।17 भक्ति अंतःकरण को निर्मल करने का एक साध्न है जिसके द्वारा निर्मल हुए अंतःकरण में ब्रह्म की भावना करना सरल हो जाता है। और इस ब्रह्मभाव में स्वात्मतत्व का अनुसंधान ही भक्ति है।18

निष्कर्ष

वेदान्त दर्शन के अनुसार एक विवेकशील जीव का चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार अर्थात् जीव में ब्रह्म भाव का अवतरण है। भव बंन्धन से मुक्ति दिलाने वाली एक मात्रा वस्तु भगवान की कृपा है जो अनेको जन्मों से साधना के बाद एक मात्रा भक्ति से प्राप्त हो जाती है उनकी इस निर्हेतुकी कृपा से शुक देवादि भवबंधन से मुक्त हो सके। 19अर्थात् भक्ति की परिणति मोक्ष में होती है। अन्यत्रा दर्शनों में भी ईश्वर भक्ति का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही है। 20साकार ब्रह्म की उपासना से उस परम्ब्रह्म को प्राप्त करने की ईच्छा तीव्र से तीव्रतर हो जाती है।गीताभाष्य में आचार्य शंकर भक्ति की परिणति के विषय पर कहते हैं कि जो समस्त इन्द्रियों द्वारा ईश्वर का भजन करता है वह उसी में लीन हो जाता है।जहाँ पर ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है वहीं भक्ति की भी परिणति समझनी चाहिए।

इस प्रकार वेदान्त दर्शनभक्तियोग के जटिल पक्ष से कुछ सरल मार्ग की परिकल्पना कर उन साधकों के लिए एक ऐसे मार्ग का निर्माण किया जो ब्रह्म प्राप्ति के दुर्गम मार्ग पर सीधे चलने में समर्थ नहीं हैं वे भक्ति के मार्ग से उसी परिणति को प्राप्त होते हैं जिसको वेदान्त दर्शन मे ज्ञानमार्ग के नाम से जाना जाता हैं।

संदर्भ सूची

1 विवेकानंद साहित्य - भाग 4 ऋ पृष्ठ -4
2 विवेकचूड़ामणि: 32
3 प्रबोधसुधकर: द्विधभक्तिप्रकरण - 171
4 प्रबोधसुधकर: द्विधभक्तिप्रकरण -172-174
5 प्रबोधसुधकर: द्विधभक्तिप्रकरण - 175

6 श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।श्रीमद्भागवत्: 7/5/23

7-कनकधरा स्तोत्रा:

8 अन्नपूर्णा स्तोत्रा: 11

9 मणिरत्नमाला: 22,31

10 राधकृष्णन्: भारतीय दर्शन -भाग 2 ऋ पृष्ठ - 573

11 विवेकचूड़ामणि: 1

12 आनन्दलहरी: 3

13 दक्षिणामूर्ति स्तोत्रा: 1

14 विष्णुषट्पदी: 3

15 देवी भुजंगप्रयात स्तोत्रा: 20

16 प्रबोधसुधकर: द्विधभक्तिप्रकरण - 166, 167

17 गीताशांकरभाष्य: 8/22

18 मणिरत्नमाला: 17

19 विवेकचूड़ामणि: 32

20 गीताशांकरभाष्य: 4/